संसदीय लोकतंत्र या सहभागी लोकतंत्र

दुनियां में दो प्रकार की शासन प्रणालियॉं होती है–1. तानाशाही 2. लोकतंत्र। तानाशाही में शासक का संविधान होता है और लोकतंत्र में संविधान का शासन। तानाशाही में गुलामी होती है और लोकतंत्र में स्वतंत्रता। तानाशाही में उच्श्रृंखलता शून्य होती है और लोकतंत्र में उच्श्रृंखलता के खतरे बने रहते हैं। तानाशाही में व्यक्ति को कोई मौलिक अधिकार नहीं होता। व्यक्ति राज्य की सम्पत्ति माना जाता है जबकि लोकतंत्र में व्यक्ति को मौलिक अधिकार होता है तथा व्यक्ति राज्य का सहायक माना जाता है। इस्लामिक व्यवस्था में मूलतः तानाशाही ही होती है। साम्यवाद भी एक ग्रुप की तानाशाही माना जाता है। भले ही साम्यवाद ने लोकतंत्र की बढ़ती प्रतिष्ठा को देखते हुए स्वयं को लोकतांत्रिक समाजवाद कहना शुरु कर दिया, किन्तु साम्यवादी व्यवस्था पूरी तरह तानाशाही ही होती है क्योंकि साम्यवाद में भी व्यक्ति को मौलिक अधिकार नहीं होते तथा व्यक्ति राज्य की सम्पत्ति माना जाता है।

लोकतंत्र भी दो प्रकार का होता है–1. जीवनपद्धति का लोकतंत्र 2. शासन पद्धति का लोकतंत्र। जीवन पद्धति का लोकतंत्र नीचे से उपर की ओर आता है तथा इस लोकतंत्र में परिवार व्यवस्था में भी लोकतंत्र होता है स्थानीय व्यवस्था में तो होता ही है। जबकि आयातित लोकतंत्र में सिर्फ शासन में ही लोकतंत्र होता है, परिवार व्यवस्था में लगभग तानाशाही ही रहती है। जीवन पद्धति के लोकतंत्र में राजनैतिक दलों में भी लोकतंत्र होता है जबकि आयातित लोकतंत्र में राजनैतिक दलों की आंतरिक व्यवस्था में भी तानाशाही ही होती है। पश्चिम के देशों में जीवनपद्धति का लोकतंत्र होता है; तो भारत, पाकिस्तान तथा अन्य दक्षिण एशिया के देशों में आयातित लोकतंत्र है। इन दक्षिण एशिया के देशों में व्यक्ति को मूल अधिकार तो प्राप्त है किन्तु पारिवारिक दलीय अथवा सामाजिक व्यवस्था में लगभग तानाशाही का बोलबाला दिखता है।

पश्चिम के देशों में जीवनपद्धति का लोकतंत्र है किन्तु यह लोकतंत्र भी कई प्रकार का है– 1. अध्यक्षीय प्रणाली 2. संसदीय प्रणाली 3. समाजवादी प्रणाली। आयातित लोकतंत्र अर्थात भारत जैसे देशों में संसदीय प्रणाली ही मुख्य रुप से स्थापित है। आयातित लोकतंत्र वाले देशों में जीवनपद्धति तक लोकतंत्र न आकर शासन पद्धति तक सीमित रहता है इसलिए ऐसे देशों में अव्यवस्था निश्चित होती है। अव्यवस्था जब लम्बे समय तक चलती है तो आम लोग अव्यवस्था से परेशान होकर मुक्ति के लिए तानाशाही की अपेक्षा करते है क्योंकि तानाशाही में कभी अव्यवस्था नहीं होती बल्कि गुलामी होती है। जब तानाशाही लम्बे समय तक चलती है तब आम लोग गुलामी से मुक्ति के लिए संसदीय लोकतंत्र की मांग करते है। यह चक्र आमतौर पर चलता रहता है। भारत में भी 70 वर्षो तक अव्यवस्था झेलने के बाद आम लोगों ने उससे मुक्ति के लिए नरेन्द्र मोदी पर अपना विश्वास व्यक्त किया। स्पष्ट दिख रहा है कि नरेन्द्र मोदी के आने के बाद भारत में समस्याऍं बहुत तेजी से सुलझ रही हैं, किन्तु समस्या के सुलझ जाने के बाद सत्ता के केन्द्रियकरण का खतरा पैदा होगा की नहीं यह अभी से नहीं कहा जा सकता। वैसे अभी कुछ दिन पहले ही मोदी जी ने अपने एक भाषण मे सहभागी लोकतंत्र की बात उठाकर इस आवाज को बहुत आश्वस्त किया है। मुझे व्यक्तिगत रूप से पूरा विश्वास है कि मोदी जी इस दिशा में भी तेज गति से आगे बढेंगे क्योंकि उन्होंने ग्राम सभा सशक्तिकरण की दिशा में भी तेज गति से आगे बढ़ने की पहल की है।

लोकतंत्र चाहे आयातित हो या जीवन पद्धति का किन्तु लोकतंत्र में संविधान का शासन माना जाता है। जहॉं जीवन पद्धति का लोकतंत्र होता है वहॉं संविधान पर आंशिक रुप से समाज का भी हस्तक्षेप होता है। किन्तु जहॉं आयातित लोकतंत्र है वहॉं संविधान का शासन नाम के लिए होता है। बल्कि संविधान पर पूरी तरह तंत्र का ही नियंत्रण होता है। तंत्र के भी तीन भाग होते है– विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका। भारत सरीखे संसदीय लोकतंत्र में चूंकि सम्पूर्ण सत्ता संविधान में निहित होती है तथा संविधान अंतिम रुप से तंत्र के नियंत्रण में रहता है इसके परिणामस्वरुप तंत्र के तीनों ही भाग संविधान पर नियंत्रण के लिए या तो आपस में प्रतिस्पर्धा करते है अथवा टकराव की सीमा तक चले जाते हैं। भारत का संसदीय लोकतंत्र भी इस टकराव से निरंतर दो चार हो रहा है। यहॉं भी न्यायपालिका और विधायिका निरंतर आपस में टकराव के मार्ग पर चल रहे हैं।

व्यक्ति की स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता की सीमाओं के निर्धारण के लिए ही शासन की आवश्यकता होती है। यह शासन तीन प्रकार का होता है– 1. स्वशासन 2. अनुशासन 3. राज्यशासन। स्वशासन सबसे अच्छी व्यवस्था होती है यद्यपि बहुत कम देखने को मिलती है। अनुशासन एक अच्छी व्यवस्था मानी जाती है तथा आमतौर पर लोकतांत्रिक देशों में दिखती है। शासन एक मजबूरी की व्यवस्था मानी जाती है जो यद्यपि अच्छी नहीं मानी जाती किन्तु इससे मुक्त भी नहीं रहा जा सकता क्योंकि उच्श्रृंखलता पर नियंत्रण के लिए यही मार्ग आवश्यक और सफल होता है। स्वशासन में भय नहीं होता, अनुशासन में आंतरिक व्यवस्था का भय होता है और शासन में तो भय के अतिरिक्त कुछ होता ही नहीं।

संसदीय लोकतंत्र का सिर्फ एक ही विकल्प होता है और वह होता है सहभागी लोकतंत्र। सहभागी लोकतंत्र को ही लोकस्वराज्य भी कहा जाता है। सहभागी लोकतंत्र लोक नियंत्रित तंत्र होता है जबकि संसदीय लोकतंत्र लोक नियुक्त तंत्र होता है। सहभागी लोकतंत्र में संविधान पर समाज का नियंत्रण होता है। समाज तंत्र को संविधान के अन्तर्गत कार्य करने के लिए अपना प्रतिनिधि या मैनेजर नियुक्त करता है। संसदीय लोकतंत्र में

प्रतिनिधि अपने को सरकार कहता भी है और मानता भी है क्योंकि संविधान तंत्र की मुट्ठी में कैद होता है। संसदीय लोकतंत्र में लोक तंत्र को नियुक्त मात्र कर सकता है नियंत्रित नहीं। जबकि सहभागी लोकतंत्र में समाज तंत्र को नियुक्त भी कर सकता है और नियंत्रित भी। सहभागी लोकतंत्र में मूल अधिकार प्रकृति प्रदत्त माने जाते है तथा संविधान या शासन की भूमिका मूल अधिकारों की सुरक्षा की गारण्टी मात्र तक सीमित होती है। जबकि संसदीय लोकतंत्र में संविधान अर्थात तंत्र कभी भी बिना जनता की राय लिये उनमें अर्थात मूल अधिकारों में संशोधन कर सकता है। सहभागी लोकतंत्र में नीचे की इकाई अपने अधिकार स्वयं तय करती है तथा शेष अधिकार उपर की इकाई को देती है जो धीरे–धीरे बहुत कम मात्रा में तंत्र के पास पहुँचते है। जबकि संसदीय लोकतंत्र में उपर की इकाई नीचे की इकाई को अधिकार देती है तथा जब चाहे वापस ले सकती है। सहभागी लोकतंत्र में सामान्यतया सहजीवन होता है और इसलिए सहजीवन में अधिकारों की छीना झपटी यदाकदा ही होती है। सहभागी लोकतंत्र में आम नागरिक कर्तव्य प्रधान होते है। संसदीय लोकतंत्र में अधिकार प्रमुख होता है तथा आमतौर पर अधिकार संग्रह की प्रवृत्ति होने से कर्तव्य करने की प्रेरणा समाप्त हो जाती है तथा अधिकारों की छीना झपटी चलती रहती है।

मेरे विचार में समस्याओं के समाधान के लिए, तंत्र से जुडी तीन इकाईयों के टकराव से बचने के लिए, सहजीवन को भी व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए तथा परिवार व्यवस्था, गॉव व्यवस्था, समाज व्यवस्था को सशक्त करने के लिए सहभागी लोकतंत्र ही एकमात्र मार्ग है। मैं जानता हूँ कि अब तक दुनियां में सहभागी लोकतंत्र पूरी तरह किसी भी देश में नहीं आया है किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि यही एकमात्र आदर्श प्रणाली है। इस आदर्श प्रणाली की शुरुवात भारत से की जा सकती है। क्योंकि भारत ऐसे देशों में प्रमुख स्थान रखता है जहॉ परिवार व्यवस्था, गॉव व्यवस्था, सहजीवन आमतौर पर मान्य परम्पराएँ बनी हुई है।

मैं जानता हूँ कि अनेक विकृतियों के कारण तथा गुलामी के कारण भारत के सहभागी लोकतंत्र में बहुत अधिक टूटफूट हुई है किन्तु भारत दुनियां का अकेला ऐसा देश है जहॉ से सहभागी लोकतंत्र की आवाजें पहले भी उठती रही है तथा वर्तमान में भी उठ रही हैं। सहभागी लोकतंत्र के लिए भारत को तत्काल कोई बड़ा परिवर्तन न करके छोटे–छोटे परिवर्तन करने होंगे–

1. परिवार व्यवस्था तथा ग्राम व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता दिलानी होगी अर्थात तंत्र परिवार, गॉव, जिले, की आंतरिक व्यवस्था में बिना उनकी सहमति के कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा।
2. संविधान संशोधन के तंत्र के पास असीमित अधिकारों में किसी न किसी रुप में लोक का हस्तक्षेप बढ़ाना होगा। यदि लोक के पास संविधान संशोधन के सारे अधिकार चले जाये तो अधिक अच्छा होगा जिसका अर्थ हुआ कि संविधान संशोधन के किसी भी प्रस्ताव पर जनमत संग्रह आवश्यक होगा। यदि ऐसा करना कठिन दिखे तो कोई ऐसी व्यवस्था करनी होगी जो तंत्र के संविधान संशोधन के असीमित अधिकारों को सीमित कर सके।
3. निर्वाचित जनप्रतिनिधियों को कभी भी वापस बुलाने की कोई न कोई व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए।
4. वर्तमान व्यवस्था पर बुद्धिजीवियों का एकाधिकार होने से श्रम और बुद्धि के बीच सुविधाओं का अंतर बढ़ता जा रहा है। श्रमजीवी अपना श्रम बुद्धिजीवियों के पास उनकी शर्तों पर बेचने के लिए मजबूर हो रहे है। किसी व्यवस्था द्वारा श्रम और बुद्धि के बीच सुविधा, सम्मान और वेतन की बढ़ती हुई दूरी को कम करना ही चाहिए।

यदि इन चार पर भी काम शुरु हुआ तो भारत संसदीय लोकतंत्र के स्थान पर सहभागी लोकतंत्र की ओर तेज गति से बढ़ना शुरु कर देगा और हमारी गति से प्राप्त सफलता सारी दुनियां का मार्ग दर्शन कर सकेगी।

पत्रोत्तर

लेखक– तवलीन सिंह

यह अमन का रास्ता नहीं

वामपंथी बुद्धिजीवियों और जिहादियों के बीच एक अजीब हमदर्दी है जो दुनियां भर में दिखती है, खासकर भारत में। सो जब भी मैंने अपने किसी लेख में ध्यान दिलाने की कोशिश की है कि कश्मीर में हिंसा अब जिहादी किस्म की हो रही है तो मुझे खूब गालियॉ सुनने को मिलती है। इसलिए अच्छा लगा जब पिछले हफ्ते कश्मीर के एक पूर्व उपमुख्यमंत्री ने यही बात कही। और भी अच्छा लगा, जब वर्तमान मुख्यमंत्री ने भी तशहुद के खिलाफ आवाज उठाई। यह कहते हुए कि दुनियां के कई मुल्कों में तशहुद फैल गई है और इससे कुछ भी हासिल नहीं हुआ और न होगा। महबुबा मुफ्ती ने जिहादी शब्द इस्तेमाल नहीं किया लेकिन स्पष्ट किया कि उनका इशारा उन्ही की तरफ है। साथ में यह भी कहा कि कुछ लोग कश्मीर घाटी के बच्चों को गुमराह कर रहे है।

पूर्व उपमुख्यमंत्री मुजफ्फर बेग ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि अब आन्दोलन कश्मीर में सिर्फ आजादी के लिए नहीं चल रहा है। अब यह है कश्मीर को एक इस्लामी मुल्क बनाने के लिए। आगे यह भी कहा बेग साहब ने कि आइ. एस. का खतरा जब अफगानिस्तान और पाकिस्तान तक पहुँच चुका है तो इसको कश्मीर से दूर नहीं समझा जा सकता है। कश्मीर में ऐसी कट्टरपंथी इस्लामी ताकतें अगर पहुंच चुकी हैं, तो भारत की सुरक्षा को गंभीर खतरा है। इन जिहादी ताकतो को पराजित करना बहुत जरुरी है और ऐसा करना असंभव होगा, जब तक प्रधानमंत्री और

भारत सरकार के अन्य मंत्री नई नीति तय करने के बदले अटल बिहारी बाजपेयी के उस पुराने इंसानियत जम्हुरियत वाले नारे को दोहराते हैं। इन तीन शब्दों का खास मतलब था, जब अटल जी प्रधानमंत्री बने थे। कश्मीर घाटी उस समय दशक लंबे हिंसक दौर से गुजर कर निकल रही थी, जिसमें न इंसानियत थी, न जम्हुरियत। रही बात कश्मीरियत की तो इसके नाम पर कश्मीरी पंडितों को घाटी से भगा दिया था कश्मीरियत के मुस्लिम ठेकेदारों ने।

आज की तारीख में कश्मीर की समस्या कुछ और है। बुरहान वानी किसी हिंसक दौर में पैदा नहीं हुआ था। उसका नाम मैंने पहली बार सुना पिछले साल, जब श्रीनगर में शांति का ऐसा माहौल था कि भारत के दूरदराज प्रांतो से टूरिस्ट आने शुरु हो गए थे। एक नई सरकार बनी थी इतने निष्पक्ष चुनावों के बाद कि भारतीय जनता पार्टी पहली बार इस गठबंधन सरकार का हिस्सा बन सकी थी। सो बुरहान बानी को भारत के खिलाफ हथियारबंद होने की इस्लाम के अलावा कोई खास वजह नहीं थी। अपने हर वीडियों में उसने स्पष्ट किया कि उसका जिहाद अल्लाह के नाम पर है और हर वीडियों में कश्मीरी नौजवानों को इस जिहाद में शामिल होने के लिए उसने आग्रह किया। यानी न उसका अपना न उसके साथियों का कोई वास्ता था उन पुराने अलगवादियों से, जो हुरियत में कई सालों से शामिल है। गृहमंत्री इन लोगों से मिलने की बातें कर तो रहे है आजकल लेकिन शायद उन्होंने गौर नहीं किया कि इनमें से एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो घाटी की वर्तमान हिंसा को रोक सकता है। सो कौन रहनुमाई कर रहा है इन बच्चों की जो कर्फ्यू में ढील देते ही निकल आते हैं सड़कों पर सुरक्षा कर्मियों पर पत्थरों से हमला करने? जो बहादूर पत्रकार अब भी घाटी से खबरें भेजने की हिम्मत रखते है, उनको थोडी सी खोजी पत्रकारिता करके इन लोगों के नाम मालूम करने चाहिए। मुझे यकीन है कि जब इनके चेहरों से नकाब उतारे जायेंगे तो मालूम होगा कि इनके खास रिश्ते हैं पाकिस्तान में बैठे इन आतंकवादी तंजीमों से जिनको पाकिस्तान के जरनैलों ने बनाया है सिर्फ इस मकसद से कि कश्मीर घाटी को भारत से अलग कर दिया जाए।

सो, भारत सरकार का अगला कदम क्या होना चाहिए? मेरा मानना है कि पहले एक नई नीति बननी चाहिए कश्मीर के लिए। इस नीति का एक अहम मुद्दा होना चाहिए आइ.एस. जैसे जिहादियों की असलियत आम कश्मीरी लोगों के सामने पेश करना। क्या आम कश्मीरी चाहता है उस किस्म का निजाम, जिस तरह का आइ.एस. की खिलाफत में लागू है? क्या आम कश्मीरी चाहता है कि औरतों का यह हाल कर दिया जाए कि जिनका चेहरा दिखता है हिजाब से उनको गोली मार दी जाए? क्या आम कश्मीरी चाहता है कि शरीअत की सजाएँ नाफिज कर दी जाए, कश्मीर घाटी में? क्या आम कश्मीरी चाहता है कि कश्मीर घाटी बिल्कुल उस तरह बन जाए जैसे पाकिस्तान बन चुका है?

मुझे यकीन है कि इन चीजों को नहीं पसंद करते है कश्मीर घाटी के आम लोग। जैसे महबुबा मुफ्ती ने खुद स्वीकार किया पिछले हफ्ते कि घाटी के पंचानवे फीसद लोग अमन शांति से ढूंढना चाहते है कश्मीर की पुरानी राजनीतिक समस्याओं का समाधान। नई कश्मीर नीति जब बनेगी उसका दूसरा अहम मुद्दा होना चाहिए भारत के प्रधानमंत्री को स्पष्ट करना कि कश्मीर के बारे में पाकिस्तान से बात करने को कभी तैयार नहीं होने वाले हैं। बातचीत का नया दौर अगर शुरु होता है हमारे पड़ोसी इस्लामी देश से तो सिर्फ उसके द्वारा फैलाई गई दहशत के बारे में बातचीत होनी चाहिए। साथ–साथ भारत सरकार को यह भी साबित करना होगा कि हम उन लोगों को दंडित करने की शक्ति रखे हैं, जो हमारे देश में आतंक फैलाने के बाद वापस जाकर पाकिस्तान में अपनी बिलों में छुप जाते हैं।

इस बात को जब भी मैंने भारत सरकार के आला अधिकारियों के सामने उठाई, अक्सर जबाब मिला कि हमारे पास ऐसा करने की ताकत नहीं है। अब इस तरह के जबाब देने का समय गुजर गया। ताकत नहीं हैं, तो इसे पैदा करना होगा नई कश्मीर नीति बना कर।

उत्तरः– दुनियां में मुख्य रुप से तीन संस्कृतियों के अनुकरण में व्यवस्थाएँ चलती है–1. भारतीय संस्कृति 2. पाश्चात्य संस्कृति 3. इस्लामिक संस्कृति। भारतीय संस्कृति में विचार मंथन को विस्तार का माध्यम माना जाता है। इस्लामिक संस्कृति को तथा पाश्चात्य संस्कृति में धन को। भारतीय संस्कृति ब्राम्हण प्रधान मानी जाती है। इस्लामिक क्षत्रिय प्रवृत्ति प्रधान तथा पाश्चात्य संस्कृति वैश्य प्रवृत्ति प्रधान। वैसे तो साम्यवाद एक चौथी संस्कृति के रुप में शुद्र प्रवृत्ति का माना गया है। किन्तु अब वह कमजोर होकर इस्लामिक संस्कृति के साथ जुड़ गया है इसलिए उसकी चर्चा व्यर्थ है।

क्षत्रिय संस्कृति का कोई भी व्यक्ति कभी किसी की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता। भले ही मजबूरी में अल्पकाल के लिए उसे गुलाम ही क्यों न रहना पड़े। किन्तु वह ऐसी परिस्थिति से सहमत कभी नहीं होगा। इस्लामिक संस्कृति का व्यक्ति सहजीवन कभी स्वीकार नहीं कर सकता। वह तो मरना या मारना जानता है। वह या तो गुलाम बनाकर रखेगा अथवा परिस्थितिवश गुलाम रहेगा। किन्तु कभी भी सहजीवन स्वीकार नहीं करेगा। यही कारण है कि इस्लामिक संस्कृति से संचालित मुसलमानों ने सारी दुनियां को अशांत कर रखा है। भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य संस्कृति के देशों को भी और यदि इन दोनों का खतरा टला तो अन्य मुस्लिम देशों को भी।

वर्तमान समय में मुस्लिम संस्कृति को ठीक–ठीक उत्तर देने में यहूदी संस्कृति ही सफल हो पायी है, जिसके मुटठी भर आबादी के इजराईल ने सबको ठंडा कर रखा है। अन्यथा रुस, चीन, भारत सहित दुनियां के सभी देश इनसे परेशान है।

यदि कश्मीर समस्या का विचार करें तो मैं आपसे सहमत हूँ कि कश्मीर की समस्या पाकिस्तान की समस्या न होकर इस्लामिक विस्तारवाद की समस्या है किन्तु यह समीकरण इतना आसान नहीं है। यदि इतना आसान रहा होता तो अब तक पश्चिम के देशों में इन सबको दबा दिया गया होता। वर्तमान समय में आबादी की दृष्टि से मुसलमान दूसरे नंबर पर है। किन्तु ताकत की दृष्टि से वे अन्य सभी संस्कृतियों से कई गुना उपर है, क्योंकि उन्हें तो सिर्फ मरना मारना आता है। अन्य कुछ नहीं। ऐसी परिस्थिति में यह इतना आसान नहीं है कि उन्हें बलपूर्वक कुचल दिया जाये। या तो वे कोई ऐसी मूर्खता कर बैठे कि जिसमें सारी दुनियां एकजुट हो जाये और इनके विस्तारवाद के मनसूबे को कुचल दें। या दूसरा मार्ग यह है कि मुसलमानों के बीच सहजीवन की प्रवृत्ति विकसित की जाये। वर्तमान परिस्थिति में हमें कई मोर्चो पर एक साथ काम करना चाहिए।

1. पूरे देश के मुसलमानों में मुस्लिम कट्टरवाद के विरुद्ध नफरत का भाव विकसित किया जाये, जैसा आपने लिखा है।
2. पाकिस्तान को भी अपने आंतरिक मामलों में शांत न रहने दिया जाये तथा ऐसा प्रयास किया जाये कि वह विश्व के अन्य मुस्लिम देशों को अपने साथ न जोड़ सके। इसके लिए कूटनीतिक तथा आर्थिक प्रयास करने होंगे।
3. कश्मीर के कुछ अति उग्रवादी मुसलमानों को अलग–थलग करके उन्हें दबाने का प्रयास किया जाये। ऐसा करने में यदि आंशिक अमानवीय सहारा भी लेना पड़े तो कोई हर्ज नहीं है।
4. दुनियां के सभी लोकतांत्रिक देशों से तालमेल मजबूत किया जाये जिससे लोकतंत्र और तानाशाही के बीच स्पष्ट ध्रुवीकरण संभव हो सके। इस प्रयत्न में साम्यवादी देशों तथा मुस्लिम देशों को एक होने से रोकने का भी प्रयास किया जाये किन्तु ऐसा प्रयास अलग–अलग न करके सभी लोकतांत्रिक देशो की सामूहिक सहमति से होना चाहिए।

मैं जानता हूँ कि चारों ही प्रयास बहुत कठिन है किन्तु हमें कुछ न कुछ करना तो होगा ही क्योंकि मुसलमान कयामत तक लड़ने को तैयार रहता है तथा हम जब तक उन्हें यह विश्वास न दिला दे कि तुम कयामत तक कश्मीर नहीं ले सकोगे तब तक वे मानने वाले जीव नहीं है। कश्मीर न्याय, अन्याय का प्रश्न नहीं है, जैसा प्रशांत भूषण सरीखे कुछ भारतीय संस्कृति से प्रभावित लोग मानते है। यदि भारत कश्मीर में पीछे हटा तो अगला पड़ाव राजस्थान या पंजाब में होगा। क्योंकि कयामत तक निपटारा संभव नहीं है। अच्छा होगा कि हम येनकेन प्रकारेण इस प्रवृत्ति को कश्मीर में ही उलझाकर रखें। अर्थात दुनियां के मुसलमान पहली बार यह मान ले कि सहजीवन स्वीकार करने के अतिरिक्त अब कोई अन्य मार्ग नहीं है। मेरा तो यह स्पष्ट मत है कि भारत सरकार को एक नई नीति बनाकर सभी धार्मिक संगठनों के स्कूलो को सरकारी मान्यता और सहायता समाप्त कर देनी चाहिए। साथ ही भारत सरकार को अल्पसंख्यक बहुसंख्यक की धारणा को भी समाप्त कर देना चाहिए। यदि समान नागरिक संहिता लागू हो जाये तो और भी अच्छी बात है।

2 ओमप्रकाश मंजुल, पीलीभित, उत्तर प्रदेश

चिन्तनीय– जी0 एस0 टी0 बिल और कश्मीर प्रस्ताव जैसे जज्बे के साथ समान नागरिक संहिता बिल पारित करें।

लोकसभा में पूर्व पारित वस्तु व सेवा कर बिल को 03.08.2016 को राज्यसभा में और राज्यसभा में पूर्व पारित कश्मीर प्रस्ताव को 12.08.2016 को लोकसभा में राष्ट्रीय भाव प्रदर्शित करते हुए सर्वसम्मति से पारित किया गया, उसी राष्ट्रीय उत्साह के साथ संसद को राष्ट्र हित में समान नागरिक संहिता बिल पारित करना चाहिए। विश्व में बढ़ रहे राष्ट्रवाद को देखते हुए आज छोटे मोटे मतभेदों को नजरंदाज करने का तकाजा है। हालांकि जी0एस0टी0 बिल को संशोधन विधेयक का रुप लेने में खासा समय लग गया। 28 फरवरी 2005 को प्रस्तावित बिल कहीं 12 वर्ष बाद 03, अगस्त 2016 को संसद से पारित हो सका। याने जी0 एस0 टी0 ने 12 वर्ष के बाद घूरे के दिन भी फिरते हैं, को ही चरितार्थ कर दिया। सत्ता पक्ष में प्रधानमंत्री और वित्त मंत्री के विशेष प्रयासों सहित सभी की कोशिशों तथा विपक्षी दलों के सकारात्मक रवैये से ही बिल की बेल सर्ग चढ सकी है। अस्तु इसमें सभी बधाई के पात्र है। बारह बरस का समय कम नहीं होता। इतनी अवधि में पांडवों ने अपना खोया राज पुनः प्राप्त कर लिया था और राम भी 14 वर्षो में लंका फतह कर अवध की राजगद्दी पर आसीन हो चुके थे। बिल मानों बीरबल की खिचडी हो गया। दोनों में खास अंतर यह रहा कि बिल बारह वर्षो में पक कर कानून बन गया और अकबर के जमाने से आग पर चढी बीरबल की खिचडी आज तक नहीं पक सकी हैं।

ऐसा ही राष्ट्रीयोत्साह उस समय भी देखा गया जब 6 अगस्त को लोकसभा में केन्द्रिय गृहमंत्री राजनाथ सिंह द्वारा पाकिस्तान के सार्क सम्मेलन में उनके साथ पाकिस्तान द्वारा अपेक्षित प्रोटोकाल का पालन न किए जाने सम्बंधी शिकायत की गयी थी। इस पर सभी सांसदो, भले ही वे किसी भी जाति, धर्म या विचारधारा के हों, ने पाकिस्तान को आडे हाथों लेकर उसकी कडी भर्त्सना की। इससे भी कुछ दिन पूर्व ही 24 जुलाई को साम्प्रदायिकता को लेकर खासे टाइप्ड मजलिस–ए इत्तेहादुल मुस्लेमीन के अध्यक्ष सांसद असदउददीन ओवैसी तथा इसलामियत के चर्चित विद्वान आल इण्डिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड के उपाध्यक्ष मौलाना कल्बे सादिक ने पाकिस्तान को लानत मलामत भेजते हुए उसे जलता हुआ घर और डूबता हुआ जहाज बताकर हिदायत दी कि वह अपनी फिक्र करे और भारत के साथ दुष्टता करने से बाज आये। श्रेय मोदी को दें या समय को यह तो मानना पडेगा कि फिलवक्त देश

में राष्ट्रीयता की लहर है, जिसका राष्ट्रहित में उपयोग किया जाना चाहिए। समान नागरिक संहिता के बारे में कुछ करने का इससे अच्छा समय नहीं आ सकता। सुदृढ राष्ट्र के निर्माणार्थ सभी के लिए एक कानून एक संविधान अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है। समान नागरिक संहिता देश की न्यायपालिका की भावना के अनुकूल भी है। अधिकतर मौलवियों और मसलखों की भी यही मंशा है, भले ही किसी मजबूरीवश वे इसे खुल कर नहीं कर रहे हैं। समान नागरिक संहिता से सर्वाधिक रक्षा मुस्लिम महिलाओं की ही होगी। फिर किसी भी तीन तलाक की मारी वानों को अपनी रक्षार्थ कोर्ट की कुंडी नहीं खटखटानी पडेगी। जनसंख्या शिक्षा सेवा शादी आरक्षण धर्मान्तरण गोहत्या इत्यादि से जुडी समस्याएँ और जाति वर्ग समुदाय सम्प्रदाय और लिंग से जुडे भेद स्वतःखत्म हो जायेंगे। किसी एक को पूर्व प्राप्त विशेष सुविधा सभी को दी जायेगी। संविधान के समक्ष लोग हिन्दू या मुसलमान न होकर भारतीय नागरिक होगे जो समान होंगे। अल्पसंख्यक होने के कारण किसी को शक की निगाह से नहीं देखा जायेगा और अतिसंख्य को यह विशेषाधिकार न होगा कि वह दूसरे को संदिग्ध या हेय दृष्टि से देखे।

इसी प्रकार वोट के सौदागर सुविधा की रेवडियॉ गलत ढंग से किसी को इसलिये नहीं बांट सकेंगे कि वह अल्पसंख्यक है या निर्दोष होने पर भी किसी को इसलिये नहीं फसाया जायेगा कि वह बहुसंख्यक हैं। सभी नागरिको को इस बात का फक होगा कि वे देश के लिए कुछ न कुछ कर रहे है। कश्मीर जैसी अमर समझी जाने वाली समस्या हमेशा के लिए मर जायेगी।

आज बेशक देश विकास की मंजिल की ओर दौड रहा दिखाई दे रहा है। पर विकास के नाम पर उन चंद समस्याओं को ढील नहीं दी जा सकती जो विकास के हनुमान को सुरसा की तरह निगलती आ रही है। विकास के आरम्भ और अंत के बीच लंबे मार्ग पर सब कुछ अच्छा ही नहीं हो रहा है। कन्याणकारी राज्य की अवधारणा से प्रेरित प्रदेश और देश की सरकारें आज अनेक ऐसी योजनाएँ भी चला रही है कि अपवाद स्वरुप कोई बाधा न आये तो गर्भ से लेकर मृत्यु तक आदमी को कोई काम करने की जरुरत ही नहीं है। अनेक योजनाएँ ऐसी है जो विकास को निगलने वाली आबादी को बढा रही है। इंदिरा जी के जमाने में अधिक बच्चों को लेकर जो भयभीत रहता था, आज वही कहता है, कि और भी ज्यादा औलादें होती तो मजा आ जाता। इन योजनाओं से दूसरे वर्ग में धन को अर्जित करने और बचत करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। समान नागरिक संहिता आ जाने पर ये समस्त समस्याएँ स्वतः समाप्त हो जायेंगी।

उत्तरः— आपने समान नागरिक संहिता के पक्ष में लिखा है। मैं भी हमेशा समान नागरिक संहिता का पक्षधर रहा हूँ, अंतर केवल यह है कि मैं समान नागरिक संहिता के नाम पर समान आचार संहिता लागू करने के विरुद्ध हूँ। मेरे विचार में अतिवादी हिन्दू जिनमें संघ परिवार, शिवसेना सहित अनेक संगठन शामिल है। वे समान नागरिक संहिता के नाम पर समान आचार संहिता थोपना चाहते है। मैं इसके पूरी तरह विरुद्ध हूँ। मेरे विचार में सामाजिक धार्मिक मामलों में राज्य को कोई कानून न बनाकर सबको अपनी–अपनी सीमा में स्वतंत्रता देनी चाहिए। कोई एक विवाह करें या दस यह राज्य का विषय नहीं है। सरकार को इससे तब तक दूरी बना लेनी चाहिए जब तक यह आपसी सहमति तथा सामाजिक या स्थानीय व्यवस्था के आधार पर चल रहा है। महिला और पुरुष को भी पूरी तरह समान स्वतंत्रता देनी चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि किसी परिवार में जितने सदस्य हों उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति में सबको समान अधिकार दे देना चाहिए। किसी प्रकार का महिला–पुरुष का भेद नहीं होना चाहिए। हिन्दू कोड बिल या महिला सशक्तिकरण जैसे किसी भी कानून को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए। कमजोरों को भी कोई विशेष अधिकार नहीं दिया जा सकता। उन्हें सरकार चाहे तो विशेष सुविधा मात्र दे सकती है किन्तु विशेष अधिकार नहीं । जब तक समान नागरिक संहिता का अर्थ प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता से नहीं जोडा जायेगा तब तक समान नागरिक संहिता का नारा सफल नहीं होगा। दुर्भाग्य से यह अर्थ समान स्वतंत्रता से बदल कर समान सुविधा मान लिया गया है।

मेरा तो ऐसा मानना है कि समान नागरिक संहिता का सबसे अधिक विरोध कटटरपंथी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही करेंगे किन्तु मुझे विश्वास है कि समान नागरिक संहिता ही कश्मीर समस्या का भी समाधान हो सकती है क्योंकि समान नागरिक संहिता के पक्ष विपक्ष में जो दो गुट बनेंगे वे स्वतः स्पष्ट कर देंगे कि कौन किस बात से सहमत है। संभव है कि विश्व हिन्दू परिषद तथा जमायते इस्लामी सरीखे कटटरपंथी लोग इस मुददे पर एक साथ एक मंच पर खडे दिखे और ऐसा होते ही अपने आप कश्मीर समस्या का भी समाधान निकालने की शुरुवात हो जायेगी।

प्रश्नोत्तर

1.(क) नारायण कौरव जी

प्रश्नः— आपने वर्ण व्यवस्था पर लिखते समय शूद्र शब्द का प्रयोग किया है। अगर समाज का शूद्रो के प्रति अछूत के भाव हैं और भाव के आधार पर शूद्र को समझा जाये तो शूद्र, छुद्र का अपभ्रंश है क्योंकि भारतीय समाज प्रेम दया करुणा त्याग जैसे गुणों को श्रेष्ठ मानता है और लोभ दंभ कपट ईर्ष्या पाखण्ड द्वेष चोरी बलात्कार आदि गुणों छुद्र। इन गुणों वाले मनुष्य को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था । छुद्र यानि भौतिक सुख पाने के लिए धर्म या समाज विरोधी कार्य करने वाले लोग झूठ बेईमानी धोखेवाज कपटी छली पाखण्डी लोग इन्हे समाज

हेय मानता था। आज यही लोग समाज प्रमुख है, सम्मान के पात्र है, समाज की सेवा करने वाले शुद्र या छुद्र नहीं माने जाते थे भारतीय समाज मोक्ष को जीवन का लक्ष्य मानता था सांसरिक भोगों को हेय।

शरद कुमार जी

1.(ख) प्रश्नः– मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ पहचानता हूँ जो जन्में तो ब्राम्हण के घर और बने धुंधकारी जो अपने कुल को लजाये वो शूद्र जो कुल को तारे वो ब्राम्हण जो तान बचाए वो क्षत्रिय और जो जीवन बचाए वो वैश्य।

उत्तरः–श्री नारायण कौरव जी ने तथा शरद कुमार जी ने शूद्र शब्द को छुद्र का अपभ्रंश माना है। मेरे विचार में यह व्याख्या पूरी तरह गलत है। शूद्र शब्द का अर्थ श्रमजीवी से माना जाता रहा है। शूद्र शब्द पुराने जमाने में भी शूद्र था और आज भी शूद्र है। धर्मग्रंथों में भी शूद्र ही शब्द रहा है। ऐसी स्थिति में इस शब्द को छुद्र का अपभ्रंश मानना ठीक नहीं।

आपने अपना कर्म बदलने को छुद्र माना। मैं नहीं समझता कि छुद्र कहने की अपेक्षा यदि शूद्र मान लेते तो क्या दिक्कत होती। यदि कोई ब्राम्हण कुल में पैदा बच्चा भविष्य में श्रमजीवी हो जाये तथा ब्राम्हण की योग्यता न रखे तो उसे छुद्र कहने की अपेक्षा शूद्र या श्रमिक कहने में क्या आपत्ति है?

शूद्र और अवर्ण अलग–अलग होते है। शूद्र चौथा वर्ण होता है, अवर्ण नहीं। जबकि समाज बहिष्कृत अवर्ण होता है। यदि आप छुद्र कहना ही चाहे तो समाज बहिष्कृत को कह सकते है जिन्हें प्राचीन समय में अवर्ण कहा जाता था। मैं यह बात भी स्पष्ट कर दूँ कि समाज बहिष्कृत को अछूत माना जाता था तथा उसे वैसा ही कार्य करने की अनुमति थी, न कि वैसा कार्य करने वाले को अछूत और अवर्ण माना जाता था। यह तो बाद में सामाजिक विकृति बनी कि वैसे अछूत और अवर्ण के सन्तान को भी अवर्ण और अछूत माना जाने लगा।

कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

प्रश्न (1) क्या संसदीय लोकतंत्र में व्यक्ति राष्ट्र की सम्पत्ति नहीं होता? वह समाज की सम्पत्ति होता है क्या?

(2) क्या पश्चिम का लोकतंत्र सहभागी नहीं?

(3) समाजवादी लोकतंत्र एक नई बात है। संसदीय, समाजवादी, साम्यवादी का फर्क क्या है?

(4) क्या लोकतंत्र में अव्यवस्था निश्चित है? क्या उसका तानाशाही के अतिरिक्त कोई समाधान नहीं? क्या संसदीय लोकतंत्र भी नहीं?

(5) आपने तानाशाही और आयातित लोकतंत्र की तुलना चक्र से की है जो हमेशा आते जाते रहते हैं। उदाहरण दें?

(6) लोकतंत्र तथा लोकस्वराज्य भिन्न–भिन्न शब्द हैं। क्या भिन्नता है?

(7) व्यक्ति की स्वतंत्रता और उच्श्रृंखलता की सीमाएँ तंत्र तय करता है। तंत्र, की कौन करता है?

(8) क्या शासन मुक्त व्यवस्था संभव है?

(9) स्वशासन और अनुशासन का फर्क क्या है?

(10)परिवार में लोकतंत्र का तरीका क्या हो सकता है? भारत का संसदीय लोकतंत्र इसमें बाधक कैसे है?

(11) क्या इस्लाम मूलतः झगडालू प्रवृत्ति का होता है?

उत्तरः–(1) व्यक्ति को व्यवस्था की इकाई न मानकर प्राकृतिक इकाई माना गया है। वह एक जीवित प्राणी है, निर्जीव नहीं। व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार माने गये हैं, सिर्फ संविधान प्रदत्त ही नहीं। जिस इकाई को प्रकृति प्रदत्त अधिकार प्राप्त हों वह किसी अन्य की सम्पत्ति हो ही नहीं सकता। न राष्ट्र की सम्पत्ति न समाज की सम्पत्ति। कोई भी अन्य, चाहे वह राज्य हो या समाज, उसकी सहमति के बिना उसके प्राकृतिक अधिकारों में तब तक कोई कटौती नहीं कर सकता जब तक उसने कोई अपराध न किया हो। ऐसा अपराध भी किसी अन्य व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों की सीमाओं के अतिक्रमण तक ही सीमित होता हैं, कोई अन्य नहीं।

(2) अब तक पूरी दुनियां में कहीं भी सहभागी लोकतंत्र नहीं है। सहभागी लोकतंत्र तथा लोकस्वराज्य समानार्थी शब्द हैं किन्तु लोकतंत्र और लोक स्वराज्य अलग–अलग। लोक स्वराज्य लोक नियंत्रित तंत्र होता है और लोकतंत्र लोक नियुक्त । लोक स्वराज्य में लोक और तंत्र के बीच एक संविधान होता है जो दोनों के बीच पुल का काम करता है। लोक संविधान के माध्यम से तंत्र को नियंत्रित करता है और तंत्र संविधान के माध्यम से ही लोक द्वारा मार्ग दर्शित होता है। लोक स्वराज्य में संविधान की भी एक भिन्न परिभाषा होती है ''तंत्र के अधिकतम तथा लोक के न्यूनतम अधिकारों की सीमाएँ निश्चित करने वाला दस्तावेज''। लोकतंत्र में तंत्र द्वारा अपनी–अपनी सुविधा अनुसार संविधान की परिभाषा बना ली जाती है। लोक स्वराज्य में संविधान संशोधन के एक मात्र अधिकार लोक को ही होते हैं जबकि लोकतंत्र में ऐसे अधिकार या तो सिर्फ तंत्र के पास होते हैं अथवा तंत्र यदा कदा जनमत संग्रह द्वारा लोक की इच्छा जान लेता है। लोक स्वराज्य में तंत्र का दायित्व सिर्फ सुरक्षा और न्याय तक ही सीमित होता हैं तथा जनहित के अन्य कार्य राज्य के दायित्व न होकर स्वैच्छिक कर्तव्य मात्र होते हैं जबकि लोकतंत्र में राज्य दायित्व और कर्तव्य का अंतर न समझकर जनहित के कार्य भी अपने दायित्व मान लेता है। इसी भूल के कारण राज्य ओवर लोडेड हो जाता है तथा सुरक्षा और न्याय पिछड़ जाने से अव्यवस्था बढने लगती है । यदि हम

दक्षिण एशिया के देशों का आकलन करें तो इन्होंने तो लोकतंत्र की मात्र नकल ही की है किन्तु पश्चिम के देश भी अब तक आदर्श लोकतंत्र अर्थात लोक स्वराज्य की दिशा में नहीं चल पा रहे हैं।

(3) साम्यवादी विचार और साम्यवाद का वर्तमान प्रदर्शन अलग–अलग विषय हैं। मार्क्स के विचारों में कुछ अच्छाई और बुराई हो सकती है किन्तु मार्क्सवाद जिस रुप में दुनियां के सामने प्रकट हुआ उसमें कहीं दूर–दूर तक अच्छाई का नामोनिशान नहीं है। साम्यवाद वर्तमान में एक राक्षसी प्रवृत्ति है जो हमेशा वेष बदलकर ही समाज के समक्ष प्रकट होती है। साम्यवाद के पूर्व दुनियां में दो अलग–अलग शब्द बहुत सम्मानित थे –1. लोकतंत्र 2. समाजवाद। साम्यवाद ने दोनो शब्दों को अपने साथ जोडकर लोकतांत्रिक समाजवाद शब्द बना दिया। इसे ही समाजवादी लोकतंत्र भी कहते हैं। जब साम्यवाद की आंधी चली और पूंजीवादी देश उस आंधी से प्रभावित होने लगे तब युरोप के अनेक देश ऐसे लोकतंत्र और समाजवाद को जोडकर नीतियॉ बना रहे हैं। भारत ने भी इक्यान्नवें के पूर्व तक ऐसी ही आर्थिक नीतियॉ बनाई थीं किन्तु उसके दुष्परिणाम देखकर उसने अपनी नीति बदली।

समाजवाद का वास्तविक अर्थ होता है समाज सर्वोच्च अर्थात लोक स्वराज्य। इसकी परिभाषा होती है प्रत्येक इकाई को इकाइ गत निर्णय लेने की असीम स्वतंत्रता। इसका भावार्थ है व्यक्ति, परिवार, गॉव, जिले, प्रदेश, तथा राष्ट्र को अपनी सीमा में निर्णय लेने की असीम स्वतंत्रता। इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सब प्रकार के निर्णय शामिल होते हैं। दुनियां के किसी देश में परिवार और गॉव को अपनी–अपनी सीमाओं के अन्तर्गत आर्थिक सामाजिक या अन्य मामलों में निर्णय लेने की असीम स्वतंत्रता नहीं है। किसी भी देश में ऐसी व्यवस्था नहीं है कि परिवार गॉव को अधिकार देगा तथा गॉव जिले को तथा इसी तरह उपर देते देते व्यवस्था पूरे विश्व तक चली जायेगी। किसी देश ने ऐसा घोषित नहीं किया है कि विश्व की एक सर्वमान्य व्यवस्था होगी तथा हर देश उसका निर्णय मानने को बाध्य होगा। मेरे विचार में विश्व व्यवस्था ही समाजवाद है किन्तु वर्तमान समय में समाजवाद शब्द इतना बदनाम हो गया है कि हम न चाहते हुए भी इस शब्द की जगह विश्व व्यवस्था शब्द प्रयोग कर रहे हैं।

(4) जिन देशों में शासन पद्धति का ही लोकतंत्र आया वहॉ तो अव्यवस्था होगी ही यह निश्चित है। आज तक दुनियां में कोई भी ऐसा तरीका नहीं निकला जहॉ लोकतंत्र तो जीवन पद्धति का न होकर शासन पद्धति का हो और अव्यवस्था न हो या आंशिक हो। ऐसे देशों में अव्यवस्था प्रतिवर्ष अपने नये–नये कीर्तिमान बनाती है। जिन देशों में जीवन पद्धति का लोकतंत्र है वहॉ अव्यवस्था आंशिक होती है, पूर्ण नहीं। ऐसे देशों में अव्यवस्था समय–समय पर घटती–बढती रहती है। अव्यवस्था से मुक्ति के दो ही मार्ग होते है– 1. तानाशाही 2. लोकस्वराज्य। तानाशाही इसका सबसे आसान किन्तु निकृष्टतम मार्ग है क्योंकि तानाशाही में गुलाम और मालिक की भावना बन जाती है। सहभागी लोकतंत्र इस समस्या का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है किन्तु समाज में स्थापित नेता धर्मगुरु या अन्य अनेक प्रकार के परजीवी ऐसा कभी होने नहीं देते। कोई डाक्टर कभी ऐसा नहीं चाहता कि बीमारियॉ होनी ही बन्द हो जावें क्योंकि इससे तो उसका रोजगार प्रभावित होता है।

(5) दक्षिण एशिया के अधिकांश देश पहले ब्रिटेन के गुलाम थे। वहॉ पहले या तो तानाशाही थी या राजतंत्र। आम नागरिक गुलाम मानसिकता के थे। जब ये देश स्वतंत्र हुए तो वहॉ शासन में लोकतंत्र आया किन्तु वह निर्वाचन व्यवस्था तक आकर रुक गया, परिवार व्यवस्था गॉव व्यवस्था में नहीं आया। परिणाम हुआ कि ब्रिटेन का संविधान न होकर हमारे निर्वाचित प्रतिनिधि ही संविधान संशोधन भी करने लगे, तथा कानून भी बनाने लगे। तंत्र ने अप्रत्यक्ष रुप से लोक को वोट देने का अधिकार छोडकर अन्य सारे अधिकार अपने पास समेट लिये। ऐसे सभी देशों में अव्यवस्था निश्चित थी। ऐसे देशों में भारत, पाकिस्तान, बंगलादेश, वर्मा, श्रीलंका, नेपाल, अफगानिस्तान, इन्डोनेशिया, मालद्वीप, मलेशिया, आदि देश शामिल है। इंडोनेशिया मलेशिया के अलावा अन्य सभी देश तानाशाही और लोकतंत्र के चक्र में समय–समय पर घूमते रहते हैं। जब अव्यवस्था अधिक होती है तब तानाशाही आ जाती है तथा जब तानाशाही आ जाती है तब लोकतंत्र की मांग उठने लगती है।

इस्लाम को मानने वाले लोग जल्दी इस चक्र में फंस जाते हैं तथा हिन्दू आमतौर पर या तो सहजीवन जीने का अभ्यस्त है या गुलामी भी सह लेता है। यही कारण है कि भारत, नेपाल, श्रीलंका आदि देश अन्य मुस्लिम देशों की तुलना में कम अस्थिर होते हैं। किन्तु इन देशों पर भी प्रभाव तो पडता ही है। नेपाल का नवीनतम उदाहरण हमारे समक्ष है। भारत की भी स्थिति लगभग ऐसी ही है। यहॉ भी अभी अनिश्चितता ही है। अगले तीन वर्ष बाद स्थिति और अधिक स्पष्ट होगी।

(6)लोकतंत्र और लोकस्वराज्य बिल्कुल अलग–अलग अर्थ रखते हैं। लोकतंत्र में तंत्र अधिकतम अधिकार सम्पन्न होता है तथा लोक न्यूनतम अधिकार सम्पन्न। लोकतंत्र में अधिकार का अर्थ शक्ति से होता है, जिसे अंग्रेजी में पावर कहते है। लोकस्वराज्य में तंत्र के पास न्यूनतम शक्ति होती है जिसका उपयोग विशेष परिस्थिति में ही होता है। लोकस्वराज्य में लोक के पास अधिकार भी होते है तथा कर्तव्य भी। लोकस्वराज्य में अधिकार का अंग्रेजी अर्थ पावर नहीं बल्कि राईट होता है। दुर्भाग्य से लोकतंत्र राईट और पावर का हिन्दी अर्थ एक कर देते है। लोकतंत्र में तंत्र के निर्देषानुसार लोक कार्य करता है जबकि लोकस्वराज्य में वह अपनी स्थानीय इकाई के निर्देषानुसार कार्य करता है। लोकतंत्र में लोक और तंत्र के बीच दूरी असीम होती है जबकि लोकस्वराज्य में लोक और तंत्र के

बीच दूरी नगन्य होती है। लोकतंत्र में लोक नियुक्त तंत्र होता है जिसमें सर्वाधिकार सम्पन्न व्यवस्था चुनने तक लोक की भूमिका होती है जबकि लोकस्वराज्य में लोक निरंतर अपनी भूमिका में सक्रिय रहता है। लोकतंत्र में लोक तंत्र का मुखापेक्षी होता है। उसकी निर्णय करने की क्षमता घटती जाती है जबकि लोकस्वराज्य में लोक अपना मुखापेक्षी होता है तथा उसकी निर्णय करने की क्षमता बढती जाती है।

(7) लोकतंत्र में व्यक्ति के अधिकारों की अधिकतम सीमा तंत्र तय करता है। तंत्र के अधिकारों की अधिकतम सीमा संविधान तय करता है। दूसरी ओर संविधान तंत्र का गुलाम होता है और तंत्र जब चाहे उसमें मनमाना फेरबदल कर सकता है। इस तरह लोकतंत्र में संविधान एक धोखा है, जो लोक को भ्रम में डाले रखने के लिए बनाया जाता है। स्पष्ट है कि तंत्र व्यक्ति या लोक के अधिकारों की सीमा भी तय करता है तथा अपनी सीमाएँ भी तय करता है । तंत्र लोक के कर्तव्य घोषित करता है तथा अपने अधिकार घोषित करता है। तंत्र अपने अधिकारो में कभी भी बढ़ोत्तरी बिना लोक से पूछे कर सकता है। लोकस्वराज्य में प्रत्येक इकाई अपनी अधिकतम सीमा निश्चित करने के लिए तब तक स्वतंत्र है जब तक वह सीमा किसी अन्य इकाई की सीमा तक न पहुँच जाये। जब ऐसी सीमाओं में टकराव होता है तब तंत्र की भूमिका शुरु होती है। अन्यथा सामान्यतया तंत्र की कोई भूमिका नहीं होती। तंत्र को यह अधिकार नहीं है कि वह किसी इकाई की, भले ही वह इकाई व्यक्ति ही क्यों न हो, अधिकारों की अधिकतम सीमा तय कर सके। तंत्र को कभी यह अधिकार नहीं कि वह किसी व्यक्ति की सम्पत्ति की अधिकतम सीमा भी तय कर सके। मैं जानता हूँ कि तंत्र में अपनी भूमिका स्थापित करने की दौड़ में शामिल अनेक लोग सम्पत्ति की अधिकतम सीमा निश्चित करने की भी वकालत करते है। ऐसे वामपंथी विचारों के लोग अप्रत्यक्ष रुप से तानाशाही के समर्थक माने जाते है जो परिस्थितिवश लोकतंत्र की नकाब लगाकर राजनीति करते रहते है।

(8) शासन रहित और शासन मुक्त दोनों अलग–अलग स्थितियॉ मानी जाती है। शासन रहित व्यवस्था आदर्श है किन्तु या तो कोरी कल्पना है या युटोपिया। क्योंकि प्राकृतिक रुप से दो मनुष्य एक समान प्रवृत्ति के हो ही नहीं सकते। जब प्रवृत्तियों का इतना अंतर है तो स्वाभाविक रुप से उसमें विवाद उत्पन्न होंगे, तथा उस विवाद के निपटारे के लिए कोई एक अलग व्यवस्था होगी। इस व्यवस्था को ही हम शासन या तंत्र कहते है। इसलिए शासन रहित व्यवस्था संभव नहीं। फिर भी शासन मुक्त व्यवस्था संभव है इसका अर्थ है कि स्वाभाविक रुप से समाज से लेकर व्यक्ति तक अपना –अपना काम स्वतंत्रतापूर्वक करते रहते है तथा जब कोई इकाई अपनी निर्धारित सीमा से बाहर जाने लगे तब उस विशेष परिस्थिति में शासन उसे बाहर जाने से रोकता है। हम यह कह सकते है कि किसी चलती हुई गाडी में ब्रेक आवश्यक है अर्थात ब्रेक रहित गाडी नहीं होती है किन्तु ब्रेक मुक्त गाडी चलते रहती है। तो इस तरह तंत्र का काम एक ब्रेक का है जो विशेष परिस्थिति में ही उपयोग किया जाना चाहिए।

(9) स्वशासन अनुशासन और शासन अलग–अलग अर्थ रखते हैं। स्वशासन का अर्थ है अपने उपर अपना नियंत्रण। अनुशासन का अर्थ है अपनी संगठनात्मक इकाई की व्यवस्था में रहना तथा शासन का अर्थ है किसी केन्द्रीय आदेश का पालन करना। स्वशासन में भय की मात्रा बिल्कुल नहीं होती। यदि कोई भय होता है तो वह सिर्फ नैतिकता का ही भय होता है। अनुशासन में अपने संगठन का भय होता है। शासन में सिर्फ भय ही होता है और कुछ नहीं। भय भी किसी असंबद्ध का होता है। व्यक्ति यदि स्वशासन का ठीक से पालन करता है तो उसे न अनुशासन की जरुरत है न ही किसी शासन की। किन्तु यदि व्यक्ति स्वशासन का ठीक से पालन नहीं कर पाता तब उसे अनुशासन की आवश्यकता होती है। जब व्यक्ति दूसरे के स्वशासन पर आक्रमण करता है तब व्यक्ति के स्वशासन में शासन का हस्तक्षेप होता है। आमतौर पर स्वशासन का ठीक–ठीक पालन करने वाले और समझने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत कम होती है। सामान्यतया अधिकांश लोग अनुशासन के अन्तर्गत रहते हैं। शासन की आवश्यकता भी कम लोगों को ही होती है।

(10) परिवार में लोकतंत्र लाने के लिए परिवार को एक संगठन का स्वरुप देना चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि परिवार का मुखिया या संचालक सबकी सहमति से बनना चाहिए तथा उसे परिवार के सामूहिक निर्णय के आधार पर काम करना चाहिए। दूसरी बात यह भी है कि परिवार की सम्पूर्ण लाभ–हानि का परिवार के सभी सदस्यों पर समान प्रभाव पड़ना चाहिए। अर्थात परिवार को कोई लाभ या हानि हो तो सबको यह महसूस हो कि उस लाभ हानि में उसका भी हिस्सा है। परिवार का कोई सदस्य यदि अपराध करता है तो परिवार का दायित्व होना चाहिए कि वह उसे रोके या उसे परिवार से अलग करें। यदि परिवार अपने दायित्व पूरे नहीं करता तो उसे भी शासन के समक्ष उत्तरदायी होना चाहिए। परिवार के किसी भी सदस्य को कभी भी परिवार छोडने या हटाये जाने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस स्वतंत्रता में किसी भी प्रकार की कोई कानूनी शर्त नहीं होनी चाहिए। वर्तमान समय में बने हुए कानून परिवार की लोकतांत्रिक व्यवस्था में बाधक हैं। यह आवश्यक नहीं होना चाहिए कि परिवार में रक्त संबंध अनिवार्य हो। परिवार की सम्पूर्ण सम्पत्ति परिवार की सामूहिक होनी चाहिए न कि व्यक्तिगत। वर्तमान समय में परिवार के किसी भी सदस्य को परिवार से अलग व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने का अधिकार है। परिवार के सभी सदस्य परिवार के समान सदस्य माने जाने चाहिए। कानून के अनुसार भी वे परिवार के सदस्य हों। पति–पत्नी, पिता–पुत्र, मॉ–बाप, जैसे रिश्ते उनका आंतरिक मामला है, कानूनी नहीं। परिवार की सम्पत्ति में बालक, वृद्ध,

स्त्री, पुरुष का कोई भेद नहीं होना चाहिए। वर्तमान समय में कानून में महिला–पुरुष, बालक–वृद्ध, पिता–पुत्र सरीखे भेद बनाकर समस्या पैदा कर दी गई है। परिवार के अंदर परिवार के प्रमुख के चयन में सबकी समान भूमिका होनी चाहिए अर्थात सब मिलकर प्रमुख का चयन करें तथा परिवार को यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह जब चाहे तब परिवार प्रमुख को अनुशासित कर सके या बदल सके। मेरे विचार में परिवार में लोकतंत्र आने में सबसे बडी बाधा वर्तमान सरकारी कानूनों का जाल है। जिसमें फंसने के लिए प्रत्येक व्यक्ति मजबूर है तथा उस जाल से निकल ही नहीं पाता।

(11) मूलतः तीन प्रकार की संस्कृतियॉ तीन अलग–अलग प्रवृत्तियों के आधार पर बनती है–(1) जन्म पूर्व के संस्कार (2) पारिवारिक वातावरण (3) सामाजिक परिवेश।

जन्म पूर्व के संस्कार जन्म के साथ आते है तथा उनमें हिन्दू मुसलमान का कोई भेद नहीं होता। पारिवारिक वातावरण बालक की प्रवृत्ति को धीरे–धीरे उस दिशा में मोड देता है। सामाजिक वातावरण उस मुडी हुई दिशा में उसे आगे बढा देता है। वर्तमान समय में तीन प्रमुख संस्कृतियॉ दुनियां में है और तीनों की प्रवृत्तियॉ अलग–अलग हैं।

(क) भारतीय संस्कृति तो मुख्य रुप से सहजीवन का सिद्धांत मानती है। इसमें निर्णय विचार मंथन के आधार पर होता है। इसे हम ब्राम्हण संस्कृति भी कह सकते है। भारतीय संस्कृति हमेशा विचारों के आधार पर ही आगे बढ़ती है।

(ख) इस्लामिक संस्कृति संगठन शक्ति को महत्वपूर्ण मानती है। इसमें शासन अधिक महत्व रखता है। यह क्षत्रिय संस्कृति मानी जाती है। इस संस्कृति में पले बढे लोग बहुत साहसी होते है हिम्मती होते है मरने मारने को तैयार रहते है। सहजीवन में कभी रह नहीं सकते। स्वयं किसी के गुलाम रह ही नहीं सकते किन्तु दूसरों को गुलाम बनाकर रखने की इच्छा बनी रहती है।

(ग) पाश्चात्य संस्कृति यह एक प्रकार से वैश्य संस्कृति मानी जाती है। ये विचार मंथन अथवा टकराव की अपेक्षा चालाकी को अधिक महत्व देते है । ये शत्रु के साथ भेद का अधिक उपयोग करते है। टकराव या समझाने बुझाने का कम। इसमें धन, व्यावहारिक संबंध, प्रेम सदभाव लोभ लालच का विशेष महत्व होता है।

(घ) इसके अतिरिक्त भी एक चौथी संस्कृति रही है जिसे हम साम्यवाद के नाम से जानते है जो शूद्र संस्कृति रही है। यह संस्कृति किसी परम्परा को नहीं मानती बल्कि बलपूर्वक अपनी परम्परा को थोपना ही इसकी मूल प्रवृत्ति है। यह साम्यवादी संस्कृति अब धीरे–धीरे समापन की ओर है और इसमें अपने को इस्लामिक संस्कृति के साथ जोडना शुरु कर दिया है इसलिए हम इसकी चर्चा से अलग हो रहे है।

संगठन में शक्ति होती है तथा शक्ति में सफलता की अधिक गुंजाइश रहती है। मुटठी भर संगठित मुसलमानों ने बलपूर्वक भारत को कई सौ वर्ष तक गुलाम बनाकर रखा। मेरे विचार में क्षत्रिय प्रवृत्ति ही सुरक्षा या अन्याय करने का सबसे अच्छा मार्ग माना जाता है। भारतीय संस्कृति में क्षत्रिय प्रवृत्ति को ब्राम्हण प्रवृत्ति के नीचे माना गया। वैश्य प्रवृत्ति को उसके नीचे माना गया और शूद्र को सबसे नीचे। भारतीय संस्कृति में चारों का संतुलन होते हुए भी विचार मंथन और सहजीवन को सर्वोच्च स्थान दिया गया। किन्तु इस्लामिक संस्कृति में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं रही और बचपन से ही बालको को एक समान क्षत्रिय प्रवृत्ति में संस्कारित कर दिया गया। स्पष्ट है कि अपवाद स्वरुप को छोडकर अन्य मुसलमान बचपन से ही क्षत्रिय प्रवृत्ति के हो जाते है जिसे हम झगडालू प्रवृत्ति मानते है। वे लडेंगे झगडेंगे ही चाहे कोई अन्य संस्कृति वाला मिले या न मिले। यदि कोई नहीं मिलेगा तो ये आपस में एक दूसरे के विरुद्ध टकरायेंगे और यदि फिर भी कोई नहीं मिला तो अपने कबीले में ही लडाई करेंगे लेकिन ये लडे बिना मान नहीं सकते।

स्पष्ट है कि इस्लामिक संस्कृति के लोग अधिक सफल और समाज के समक्ष सबसे बडी समस्या के रुप में होते है। ऐसे लोगों को न आसानी से समझाया जा सकता है, न ही कुचला जा सकता है। ऐसी परिस्थिति में बहुत सूझबूझ से अन्य सभी प्रवृत्ति के लोगों को एकजुट होकर सभी अलग–अलग मार्गो पर काम करना चाहिए।